और अंत में

बच्चे प्रश्न करने से क्यों डरते हैं ?

• दिनेश कर्नाटक

नौकरी करना और किसी पेशे को जीना दो अलग बातें हैं। नौकरी करने वाला अपने काम से आत्मिक रूप से नहीं जुड़ पाता। उसका उद्देश्य केवल नौकरी करना होता है। वह निर्लिप्त भाव से दिया गया काम कर देता है। शिक्षा का कार्य केवल शरीर ही नहीं आत्मा की भी संलिप्तता की मांग करता है। जब शिक्षक अपनी कक्षा के बच्चों से जुड़ने की कोशिश करता है तो बच्चे भी उससे जुड़ने लगते हैं। तब सीखना-सिखाना मिला-जुला कार्य हो जाता है। जब अपने विद्यार्थियों से जुड़ने की इच्छा न हो तो शिक्षण की प्रक्रिया नीरस हो जाती है। एक शिक्षक को अपने आप से हमेशा पूछना चाहिए कि क्या वह अपने विद्यार्थियों से अपने बच्चों की तरह पेश आता है ?

इस बार मई माह में देहरादून में प्राथमिक शिक्षकों के मॉड्यूल निर्माण हेतु आयोजित एक कार्यशाला में प्रतिभाग किया। वहां एस. सी. आर. टी., उत्तराखंड की प्रवक्ता हेमलता तिवारी हमारे समूह की संयोजक थी। हेमलता दीदी उत्साही शिक्षक प्रशिक्षिका हैं। उनकी शिक्षण प्रक्रिया तथा बाल मनोविज्ञान को लेकर समझ साफ है। जब समझ साफ होती है तो आत्मविश्वास होना स्वाभाविक है। हेमलता दीदी समूह के समक्ष हंसते-मुस्कराते हुए आती। खुलकर बातें करती। इसका असर यह होता कि प्रतिभागी जबरदस्ती ओढ़ी जाने वाली गंभीरता से मुक्त होकर सहज हो जाते और अपनी बात खुलकर कहने लगते। अपने इस अंदाज से हेमलता दीदी कटे-कटे रहने वाले प्रतिभागियों को भी बगैर कुछ कहे कार्य करने के लिए प्रेरित करती। एक ओर जहां वे माहौल को बिलकुल सहज बना देती थी, वहीं अपनी कार्ययोजना पर दृढ़ता तथा गंभीरता से काम करती। इस प्रकार वे अपने शैक्षणिक उद्देश्य की ओर तेजी से बढ़ती जाती।

इस उदाहरण से एक बात स्पष्ट है कि सीखना-सिखाना भयमुक्त, प्रसन्न तथा उत्साहजनक माहौल में ही अच्छा हो सकता है। भयभीत तथा तनावग्रस्त शिक्षक-शिक्षिकाएं अपने विद्यार्थियों को प्रेरित नहीं कर सकते। वे उन्हें भय और तनाव ही दे सकते हैं। परिवार तथा शिक्षा से जुड़े लोगों का यह दायित्व है कि वे अपने आस-पास सहज, प्रसन्न तथा उत्साहजनक माहौल की रचना करें। अच्छा शिक्षण, अच्छी कहानी, अच्छी कविता तथा अच्छे गीत की तरह विद्यार्थी में आत्मविश्वास पैदा करता है। उसे बोलने, भागीदारी तथा प्रश्न करने के लिए प्रेरित करता है। बच्चों के मूल्यांकन की एक बड़ी कसौटी उनका मौलिक प्रश्न करना है। पढ़े हुए को उगल देना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि पढ़े हुए से प्रश्नों का जन्म लेना। अगर एक शिक्षक के पढ़ाने के बाद बच्चे सवाल करने लगते हैं तो यह शिक्षक की सफलता है।

बच्चे जन्म के साथ अपार ऊर्जा, उत्साह तथा जिज्ञासा लेकर आते हैं। यह गुण हर बच्चे में जन्मजात होता है। अगर इन गुणों को सही दिशा मिल जाती है तो ये बच्चे अपने घर-परिवार, समाज-देश को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े होते जाते हैं, उनकी ऊर्जा, उत्साह और जिज्ञासा क्षीण पड़ने लगती है। इसके कारण हमारे परिवार तथा समाज में विद्यमान हैं। कम बच्चे ही होते हैं, जो अपने शिक्षकों, अभिभावकों की सहायता से अपने रास्ते को पहचानकर पूरी तन्मयता से उस दिशा की ओर बढ़ चलते हैं। शेष बच्चों को उनकी राह खोजने में सहायता करने वाला न तो घर में होता है, न स्कूल में और न समाज में। ऐसे दिशाविहीन नागरिकों से घर, समाज तथा देश भी दिशाहीनता का शिकार हो जाता है।

बच्चों के साथ कैसा बर्ताव किया जाए ?इस बारे में हमारे वहां न तो घर-परिवार और न ही देश-समाज की कोई स्पष्ट समझ है। अधिकांश लोग मौका मिलने पर स्त्रियों और बच्चों से अच्छा व्यवहार नहीं करते। हमारे वहां विवाह लोगों के लिए स्त्री-पुरूष मिलन की स्वीकृत संस्था भर होती है। लोग इसके साथ जुड़ी हुई जिम्मेदारियों से परिचित नहीं होते। उनके पास अपने घर तथा बच्चों के लिए कोई योजना नहीं होती। जैसे ही जिम्मेदारियों का बोझ पड़ना शुरू होता है, वे मैदान छोड़कर भागने लगते हैं। ऐसे लोगों के जीवन में बच्चों का आगमन अनामंत्रित अतिथि की तरह होता है। वे उनके आगमन को स्वीकार नहीं कर पाते और बच्चों को मां-बाप का सहज प्रेम तथा प्रोत्साहन नहीं मिल पाता। वे जन्म के बाद से ही बच्चों का उत्पीड़न करने लगते हैं। उत्पीड़ित बच्चे उत्पीड़ित समाज की रचना करते हैं। वे जहां भी जाते हैं, आधे-अधूरे मन के साथ जाते हैं। न वे स्कूल में रम पाते हैं और न समाज में। आत्मकेन्द्रित समाज के लिए बच्चों की जिज्ञासा, उनके सवालों का कोई अर्थ नहीं होता। उनके सवालों को वे परेशान करने की चीज समझते

हैं। अत: डांटकर या मारकर चुप करा देते हैं।

घर के बाद बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण की दूसरी महत्वपूर्ण संस्था स्कूल है। स्कूल तथा वहां के शिक्षक-शिक्षिकाएं बच्चों के प्रति सकारात्मक होंगे तो बच्चे खुलकर उनसे सवाल कर सकेंगे। उनकी जिज्ञासा को पंख लगेंगे। लेकिन ऐसा होता नहीं है। बहुत दिन हुए सोशल मीडिया में किसी प्रतिष्ठित स्कूल के हॉस्टल में रह रहे बच्चों के साथ वहां के वार्डन द्वारा की जा रही मारपीट का एक वीडियो देखा था। वार्डन सामने खड़े प्राइमरी स्तर के बच्चों को एक-एक कर सामने लाता, उन्हें बेंत से पीटता, फिर उठाकर फैंक देता। बच्चों के साथ मारपीट का वह वीडियो दिल दहला देने वाला था। लोगों ने अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा के लिए उस तथाकथित नामी गिरामी स्कूल में भेजा होगा और वहां उनके साथ इस तरह का अमानवीय बर्ताव हो रहा है। वह वार्डन बच्चों को भयभीत करके नियंत्रण में रखना चाहता है। वही नहीं हम सब भी यही करते हैं। हम सब को यही तरीका सबसे आसान लगता है। बच्चे से बात करने, उसकी समस्या को ध्यान से सुनकर समाधान निकालने के लिए न तो हमारे पास, न हमारी शिक्षा व्यवस्था में और न ही हमारे पाठ्यक्रम में समय है, न ही धैर्य है और न ही इस पद्धति पर हमें यकीन है। परिणाम यह है कि हम अपने निजी तथा सार्वजनिक जीवन में भय के दुश्चक्र से बाहर नहीं निकल पा रहे हैं।

बच्चे के जीवन में शिक्षक-शिक्षिकाओं का महत्व माता-पिता के बराबर है। जितना समय वे घर में रहते हैं, लगभग उतना ही समय वे स्कूल में शिक्षक-शिक्षिकाओं तथा अपने साथियों के साथ बिताते हैं। स्कूल न सिर्फ बच्चों के शैक्षिक, सांस्कृतिक, शारीरिक, मानसिक तथा कलात्मक उन्नयन के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि यह उनके सामाजीकरण के लिहाज से भी महत्वपूर्ण है। सवाल यह है कि बच्चों के प्रति इतनी तरह से जिम्मेदार स्कूल इन भूमिकाओं को निभाने के लिए तैयार है ?क्या स्कूल को अपनी इन जिम्मेदारियों का एहसास है ?जवाब में यही कहा जा सकता है कि अपने देश में स्कूल की अवधारणा कई तरह के उद्देश्यों में उलझकर रह गई है। कहीं इसका उद्देश्य पैसा कमाना है। कहीं अपने धर्म या मत का प्रचार करना। कहीं किसी खास उद्देश्य के लिए दीक्षित करना, जैसे सैनिक स्कूल, धार्मिक शिक्षा आदि-आदि। कहीं शिक्षा दिए जाने का दिखावा भर किया जाता है।

शिक्षा से जुड़े लोग- मुख्यत: शिक्षक या प्रशासक भी क्या शिक्षा की अवधारणा को समझते हुए इस क्षेत्र में हैं या केवल नौकरी या आजीविका के लिए ?सच तो यह है कि हमारे समाज का मूल ध्येय किसी भी तरह पैसा कमाना हो चुका है। उसमें भी शार्ट कट से कमाने का प्रचलन अधिक होता जा रहा है। यानी मेहनत, उद्यमशीलता तथा रचनात्मकता का कोई महत्व नहीं है। हमारे समाज में अभी भी लोग केवल इंजीनियर, डॉक्टर, व्यापारी, क्रिकेट का खिलाड़ी, अभिनेता, आईएएस, पीसीएस, मैनेजर ही बनना चाहते हैं। बहुत कम लोग हैं जो शिक्षा, कृषि, उद्यमिता आदि क्षेत्रों में जाना चाहते हैं। शिक्षा में ऐसे लोगों की संख्या बहुत ज्यादा है जो जाना तो कहीं और चाहते थे, लेकिन वहां नहीं पहुंच पाने के कारण यहां आ गए। यहां आने में कोई बुराई नहीं है। जब आ ही गए हैं तो यहीं का हो जाना चाहिए। लेकिन अधिकांश लोग यहां के नहीं हो पाते। वे इस पेशे को आजीविका के रूप में निभाते चले जाते हैं।

नौकरी करना और किसी पेशे को जीना दो अलग बातें हैं। नौकरी करने वाला अपने काम से आत्मिक रूप से नहीं जुड़ पाता, उसका उद्देश्य केवल नौकरी करना होता है। वह निर्लिप्त भाव से दिया गया काम कर देता है। शिक्षा का कार्य केवल शरीर ही नहीं आत्मा की भी संलिप्तता की मांग करता है। जब शिक्षक अपनी कक्षा के बच्चों से जुड़ने की कोशिश करता है तो बच्चे भी उससे जुड़ने लगते हैं। तब सीखना-सिखाना मिला-जुला कार्य हो जाता है। जब अपने विद्यार्थियों से जुड़ने की इच्छा न हो तो शिक्षण की प्रक्रिया नीरस हो जाती है। एक शिक्षक को अपने आप से हमेशा पूछना चाहिए कि क्या वह अपने विद्यार्थियों से अपने बच्चों की तरह पेश आता है ? क्या वह जब अपने विद्यार्थियों के पास जाता है तो उसी तरह से आह्लादित होता है, जैसे वह अपने बच्चों से मिलने के समय होता है ? अगर वह अपने शिक्षण को इस तरह करता है तो वह शिक्षण का आनंद उठाता है। जब शिक्षक आनंद में होता है तो उसके विद्यार्थियों को भी पढ़ने-लिखने में आनंद आता है। तब बच्चे सीखने लगते हैं और प्रश्न करने लगते हैं। दोनों के बीच आत्मीयता उत्पन्न होती है।

हिन्दी से एम.ए. करने के दौरान प्रोफेसर ओमप्रकाश गंगोला से मेरा कुछ ऐसा आत्मीय संबंध बना, जो आज 22-23 साल बाद भी कायम है। बात इतनी थी कि वे अपने विषय भारतीय तथा पश्चिमी काव्यशास्त्र से प्रेम करते थे और मुझे उस विषय को जानने-समझने की ललक थी। उनके लैक्चर के दौरान मैं उनसे तमाम सवाल करता और वे बड़े उत्साह से मेरी जिज्ञासाओं को शांत करते। मैं उनके जैसा गुरू पाकर आनंदित था और वे शायद एक जिज्ञासु छात्र को पाकर प्रसन्न थे। कई बार तो पूरी क्लास हम दोनों के प्रश्नोत्तर को सुनते रहती थी। प्राध्यापक और भी थे, मगर उनसे वह आत्मीयता नहीं बनी। कारण साफ है, उनमें से अधिकांश लोग सिर्फ नौकरी करते थे। वे क्लास में आते और अपना लैक्चर देकर चलते बनते। उन्हें किसी तरह की चुनौती पसंद नहीं थी। उनकी पाठ योजना पहले से तय होती थी। वे संवाद से बचना चाहते थे। उनका सारा ध्यान कोर्स को पूरा करने में होता था। ऐसे में स्वाभाविक है कि वे प्रश्न और संवाद को पसंद नहीं करते। शायद तभी उनमें से अधिकांश को मैं भूल चुका हूं।

बच्चे प्रश्न नहीं करते क्योंकि हम उनसे संवाद स्थापित नहीं करना चाहते। क्योंकि हम उनके साथ आगे नहीं बढ़ना चाहते। क्योंकि हम अपने रोजमर्रा के सुविधाजनक ढर्रे को तोड़ना नहीं चाहते। क्योंकि हम परिश्रम नहीं करना चाहते। बच्चे प्रश्न नहीं करते क्योंकि हम भी प्रश्न नहीं करते। हम प्रश्न करते तो बच्चे भी प्रश्न करते। ❑ ❑ ❑